Vagisha International Multidisciplinary Research Journal
(International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal)
Volume-01, Issue-02, April-2026| ISSN: 3139-2776 (online)
Available online at:https://vimrj.com/

भारतीय ज्ञान परम्परा और इतिहास : विश्वबोध, भारतबोध एवं सांस्कृतिक विरासत का विमर्श

डॉ. चंद्रशेखर श्रीवास्तव

अस‍ि. प्रो., राजनीतिक विज्ञान विभाग, श्री गणेश राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय डोभी, जौनपुर
e-mail: shekharsgr@gmail.com

Received: 06 March 2026 | **Accepted:** 15 March 2026 | **Published:** 25 April 2026

शोध सार

भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की प्राचीनतम एवं समृद्ध ज्ञान–धाराओं में से एक है, जिसने मानव जीवन के दार्शनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और नैतिक पक्षों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। प्रस्तुत अध्ययन में विश्वबोध, भारतबोध, सत्ता एवं वर्चस्व, नगरीय प्रबंधन, पुरातत्त्व, पुरातात्त्विक संरक्षण, मूर्त एवं अमूर्त सांस्कृतिक विरासत तथा परम्परागत ज्ञान प्रणालियों के सामाजिक–सांस्कृतिक जुड़ाव का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती है। "वसुधैव कुटुम्बकम" और सह–अस्तित्व की अवधारणा भारतीय चिंतन की वैश्विक दृष्टि को अभिव्यक्त करती है। साथ ही, भारतीय सभ्यता की नगर–योजना, जल–संरक्षण, स्थापत्य एवं सांस्कृतिक संरक्षण की परम्पराएँ उसकी व्यावहारिक बुद्धिमत्ता को दर्शाती हैं। शोध में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि औपनिवेशिक वर्चस्व और आधुनिक वैश्वीकरण के बावजूद भारतीय सांस्कृतिक चेतना निरंतर सक्रिय रही है। निष्कर्षतः भारतीय ज्ञान परम्परा का अध्ययन सांस्कृतिक आत्मबोध, सामाजिक समन्वय तथा वैश्विक मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए अत्यंत आवश्यक है।

बीज शब्द : भारतीय ज्ञान परम्परा, विश्वबोध, भारतबोध, सांस्कृतिक विरासत, पुरातात्त्विक संरक्षण, परम्परागत ज्ञान प्रणाली, सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना

मुख्य शोध

भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की सबसे प्राचीन और सतत् विकसित होने वाली ज्ञान–परम्पराओं में से एक है। यह केवल दार्शनिक या आध्यात्मिक विमर्श तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसमें समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, पर्यावरण, नगर–योजना, चिकित्सा, स्थापत्य, कला, कृषि, शिक्षा तथा सांस्कृतिक

संरक्षण जैसे विविध आयाम समाहित रहे हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल आधार 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी सार्वभौमिक अवधारणाएँ रही हैं, जिनके माध्यम से मानव और प्रकृति के मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया। यही कारण है कि भारतीय इतिहास केवल राजाओं और युद्धों का इतिहास नहीं है, बल्कि यह ज्ञान, संस्कृति, परम्परा और सामाजिक चेतना का इतिहास भी है। भारतीय सभ्यता में ज्ञान को केवल सूचना या बौद्धिक उपलब्धि के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि उसे आत्म–विकास और लोकमंगल का माध्यम माना गया है (Radhakrishnan, 1927)।

भारतीय ज्ञान परम्परा के अंतर्गत 'विश्वबोध' और 'भारतबोध' दो अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ हैं। 'विश्वबोध' का आशय सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में देखने की चेतना से है, जबकि 'भारतबोध' भारतीय सभ्यता, संस्कृति, इतिहास और परम्पराओं के प्रति आत्मीय बोध को व्यक्त करता है। वैदिक साहित्य में वर्णित "अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्" की भावना विश्वबोध का ही प्रतिफल है। भारतीय चिंतन में मानव मात्र के कल्याण को सर्वोच्च माना गया, जिसके कारण यहाँ की ज्ञान–परम्परा सार्वभौमिक और समन्वयवादी बन सकी (Sharma, 2005)।

भारतबोध की अवधारणा भारतीय इतिहास की निरंतरता और सांस्कृतिक एकता को समझने में सहायक है। उपनिषदों, पुराणों, महाकाव्यों तथा लोक–साहित्य में भारत की सांस्कृतिक चेतना का व्यापक चित्रण मिलता है। भारतबोध केवल भौगोलिक सीमाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज की सांस्कृतिक स्मृति, साझा परम्पराओं और ऐतिहासिक अनुभवों से निर्मित होता है। आधुनिक काल में औपनिवेशिक इतिहास–लेखन ने भारतीय ज्ञान परम्परा को अवैज्ञानिक और मिथकीय सिद्ध करने का प्रयास किया, किंतु उत्तर–औपनिवेशिक इतिहासकारों ने भारतीय स्रोतों के पुनर्पाठ द्वारा इस दृष्टिकोण को चुनौती दी (Thapar, 2002)।

सत्ता और वर्चस्व का प्रश्न भारतीय इतिहास और ज्ञान–परम्परा के अध्ययन में विशेष महत्त्व रखता है। प्रत्येक समाज में ज्ञान और सत्ता का गहरा संबंध होता है। मिशेल फूको ने ज्ञान और शक्ति को परस्पर संबद्ध मानते हुए कहा कि सत्ता ज्ञान का निर्माण करती है और ज्ञान सत्ता को वैधता प्रदान करता है (थ्वनबंनसज, 1980)। भारतीय संदर्भ में ब्राह्मणवादी, औपनिवेशिक और आधुनिक राज्य–सत्ता के विभिन्न रूपों ने ज्ञान के स्वरूप को प्रभावित किया। उदाहरणस्वरूप औपनिवेशिक काल में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली लागू कर भारतीय पारम्परिक शिक्षा प्रणाली को कमजोर किया गया। मैकाले की शिक्षा नीति का उद्देश्य ऐसे वर्ग का निर्माण करना था जो भारतीय होकर भी मानसिक रूप से अंग्रेजी सत्ता के प्रति निष्ठावान हो (Macaulay, 1835/2001)। इसके परिणामस्वरूप भारतीय भाषाओं, गुरुकुल परम्परा और स्वदेशी ज्ञान–विज्ञान को हाशिये पर धकेल दिया गया।

हालाँकि भारतीय समाज में सत्ता और वर्चस्व के विरुद्ध प्रतिरोध की परम्परा भी रही है। भक्ति आन्दोलन, सूफी परम्परा और लोक–साहित्य ने सामाजिक समरसता तथा वैकल्पिक ज्ञान–चेतना को विकसित किया। कबीर, रैदास और नानक जैसे संतों ने जाति और धार्मिक वर्चस्व का विरोध करते हुए मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इसी प्रकार आधुनिक काल में महात्मा गांधी ने पश्चिमी आधुनिकता और औद्योगिक सभ्यता की आलोचना करते हुए भारतीय ग्राम्य–जीवन, स्वावलंबन और नैतिक राजनीति पर बल दिया (Gandhi, 1909/2009)।

भारतीय ज्ञान परम्परा में नगरीय प्रबंधन का भी अत्यंत विकसित स्वरूप देखने को मिलता है। सिंधु–सरस्वती सभ्यता के नगरोंकृजैसे मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, धोलावीरा और लोथलकृमें सुव्यवस्थित नगर–योजना, जल–निकासी व्यवस्था, सार्वजनिक स्नानागार और व्यापारिक संरचनाएँ प्राप्त होती हैं। यह दर्शाता है कि प्राचीन भारत में शहरी जीवन के संगठन और प्रबंधन की उन्नत समझ विकसित थी (Possehl, 2002)। धोलावीरा की जल–संरक्षण प्रणाली आज भी पर्यावरणीय दृष्टि से अनुकरणीय मानी जाती है।

मौर्यकाल में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नगर प्रशासन, कर–व्यवस्था, व्यापार, सुरक्षा तथा सार्वजनिक सुविधाओं के विस्तृत निर्देश मिलते हैं। कौटिल्य ने नगराध्यक्ष की नियुक्ति तथा नगर के विभिन्न विभागों के संचालन का उल्लेख किया है, जो प्राचीन भारतीय प्रशासनिक दक्षता का प्रमाण है (Kangle, 1965)। इसी प्रकार दक्षिण भारत के चोल शासन में स्थानीय स्वशासन और जल–प्रबंधन की अत्यंत प्रभावी प्रणाली विकसित हुई थी। मंदिर केवल धार्मिक स्थल नहीं थे, बल्कि वे आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र भी थे। भारतीय पुरातत्त्व भारतीय इतिहास और ज्ञान–परम्परा को समझने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। पुरातात्त्विक उत्खननों ने भारतीय सभ्यता की प्राचीनता और सांस्कृतिक निरंतरता को प्रमाणित किया है। अलेक्जेंडर कनिंघम से लेकर बी. बी. लाल और आर. एस. बिष्ट जैसे पुरातत्त्वविदों ने भारतीय इतिहास के अनेक महत्त्वपूर्ण आयामों को उजागर किया। पुरातत्त्व के माध्यम से प्राप्त अवशेष—जैसे मुद्राएँ, अभिलेख, स्थापत्य, मूर्तियाँ और उपकरण—इतिहास लेखन के विश्वसनीय स्रोत माने जाते हैं (Singh, 2008)।

पुरातात्त्विक संरक्षण भारतीय सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने की दिशा में अत्यंत आवश्यक है। भारत में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (Archaeological Survey of India) द्वारा अनेक स्मारकों और पुरास्थलों का संरक्षण किया जाता है। 1958 का 'Ancient Monuments and Archaeological Sites and Remains Act' पुरातात्त्विक धरोहरों के संरक्षण हेतु महत्त्वपूर्ण कानूनी आधार प्रदान करता है। वर्तमान समय में नगरीकरण, प्रदूषण, पर्यटन और अवैध निर्माण के कारण

अनेक ऐतिहासिक स्थलों को खतरा उत्पन्न हो रहा है। उदाहरणस्वरूप ताजमहल को वायु–प्रदूषण से क्षति पहुँचने की समस्या लंबे समय से चर्चा का विषय रही है।

मूर्त और अमूर्त सांस्कृतिक विरासत भारतीय संस्कृति की पहचान का आधार हैं। मूर्त विरासत में स्मारक, मंदिर, स्थापत्य, मूर्तियाँ, हस्तलिपियाँ और पुरातात्त्विक अवशेष सम्मिलित होते हैं, जबकि अमूर्त विरासत में लोक–परम्पराएँ, संगीत, नृत्य, भाषा, त्योहार, अनुष्ठान और पारम्परिक ज्ञान शामिल हैं। न्छम्ैब् ने अमूर्त सांस्कृतिक विरासत की अवधारणा को वैश्विक स्तर पर मान्यता प्रदान की है। भारत की योग परम्परा, कुंभ मेला, रामलीला तथा वैदिक chanting जैसी परम्पराएँ UNESCO की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत सूची में सम्मिलित हैं।

भारतीय मूर्त विरासत में मंदिर स्थापत्य विशेष उल्लेखनीय है। उत्तर भारत की नागर शैली, दक्षिण भारत की द्रविड़ शैली और वेसर शैली भारतीय स्थापत्य कला की विविधता को दर्शाती हैं। कोणार्क सूर्य मंदिर, खजुराहों तथा वृहदेश्वर मंदिर (Brihadisvara Temple) भारतीय स्थापत्य कौशल के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन स्थापत्य संरचनाओं में केवल धार्मिक आस्था ही नहीं, बल्कि गणित, ज्यामिति, खगोलशास्त्र और शिल्प विज्ञान का भी समन्वय दिखाई देता है (Michell, 1988)। अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में लोक–संस्कृति की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भारतीय लोकगीत, लोकनृत्य और लोककथाएँ सामाजिक स्मृति तथा सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने का कार्य करती हैं। भोजपुरी, अवधी, मैथिली, राजस्थानी और अन्य लोकभाषाओं में निहित साहित्य भारतीय जनजीवन की अनुभूतियों और ऐतिहासिक अनुभवों का दर्पण है। आधुनिक वैश्वीकरण और बाजारवाद के प्रभाव से अनेक लोक–परम्पराएँ विलुप्ति के कगार पर हैं। इसलिए सांस्कृतिक संरक्षण के लिए स्थानीय समुदायों की भागीदारी आवश्यक है।

भारतीय परम्परागत ज्ञान प्रणाली का सामाजिक–सांस्कृतिक जुड़ाव अत्यंत व्यापक रहा है। आयुर्वेद, योग, ज्योतिष, वास्तुशास्त्र, कृषि–विज्ञान और जल–संरक्षण जैसी प्रणालियाँ केवल तकनीकी ज्ञान नहीं थीं, बल्कि वे सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक व्यवहार का हिस्सा थीं। आयुर्वेद में स्वास्थ्य को शरीर, मन और आत्मा के संतुलन के रूप में देखा गया है। Charaka Samhita तथा Sushruta Samhita भारतीय चिकित्सा विज्ञान की उन्नत परम्परा को दर्शाते हैं।

भारतीय कृषि–ज्ञान भी पर्यावरणीय संतुलन और स्थानीय परिस्थितियों पर आधारित था। पारम्परिक जल–संरक्षण प्रणालियाँ— जैसे बावड़ी, तालाब और आहर–पाइन व्यवस्था—स्थानीय पारिस्थितिकी के अनुकूल विकसित हुई थीं। राजस्थान के जोहड़ और दक्षिण भारत के टैंक सिंचाई तंत्र सामुदायिक सहभागिता पर आधारित थे। आधुनिक विकास मॉडल ने इन परम्परागत प्रणालियों की

उपेक्षा की, जिसके कारण जल–संकट और पर्यावरणीय असंतुलन की समस्याएँ बढ़ीं (Agarwal – Narain, 1997)।

भारतीय शिक्षा प्रणाली भी सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन से जुड़ी हुई थी। गुरुकुल प्रणाली में शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यावसायिक दक्षता प्राप्त करना नहीं था, बल्कि नैतिकता, अनुशासन और चरित्र–निर्माण भी था। नालंदा, तक्षशिला और विक्रमशिला जैसे प्राचीन विश्वविद्यालय अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध थे। यहाँ दर्शन, चिकित्सा, गणित, व्याकरण, खगोलशास्त्र और बौद्ध अध्ययन जैसे विविध विषय पढ़ाए जाते थे (Altekar, 1944)।

आधुनिक समय में भारतीय ज्ञान परम्परा के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता महसूस की जा रही है। नई शिक्षा नीति 2020 में भारतीय भाषाओं, पारम्परिक ज्ञान और सांस्कृतिक विरासत के अध्ययन पर बल दिया गया है। यह प्रयास भारतीय शिक्षा को स्थानीय संदर्भों और सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने की दिशा में महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। हालाँकि इस प्रक्रिया में आलोचनात्मक दृष्टिकोण बनाए रखना भी आवश्यक है, ताकि अंध–परम्परावाद और सांस्कृतिक रूढ़िवादिता से बचा जा सके। वैश्वीकरण और डिजिटल युग में भारतीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण की चुनौतियाँ और संभावनाएँ दोनों बढ़ी हैं। डिजिटल अभिलेखीकरण, वर्चुअल संग्रहालय और ऑनलाइन शिक्षा प्लेटफॉर्म के माध्यम से सांस्कृतिक धरोहरों को व्यापक स्तर पर संरक्षित और प्रसारित किया जा रहा है। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय काला केंद्र जैसी संस्थाएँ भारतीय कला और संस्कृति के डिजिटलीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

अंततः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा केवल प्राचीन ग्रंथों, धार्मिक विश्वासों अथवा सांस्कृतिक स्मृतियों का संग्रह मात्र नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत और सतत् विकसित होने वाली वैचारिक धारा है, जिसने भारतीय समाज को हजारों वर्षों तक दिशा प्रदान की है। भारतीय ज्ञान परम्परा का वास्तविक स्वरूप उसके समन्वयवादी, मानवतावादी और सार्वभौमिक दृष्टिकोण में निहित है। यही कारण है कि भारतीय चिंतन ने सदैव ज्ञान को लोकमंगल, आत्मबोध और विश्वकल्याण से जोड़कर देखा। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य, जहाँ मानव समाज युद्ध, पर्यावरणीय संकट, सांस्कृतिक विखंडन, मानसिक तनाव और सामाजिक असमानताओं जैसी समस्याओं से जूझ रहा है, वहाँ भारतीय ज्ञान परम्परा की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है।

भारतीय चिंतन में 'विश्वबोध' की अवधारणा मानवता के व्यापक कल्याण की चेतना को व्यक्त करती है। "वसुधैव कुटुम्बकम" केवल एक दार्शनिक कथन नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता का मूल सांस्कृतिक दर्शन है। इसका अर्थ है कि सम्पूर्ण पृथ्वी एक परिवार है और प्रत्येक मानव, प्रकृति तथा जीव–जगत परस्पर संबद्ध हैं। आज जब विश्व राष्ट्रवाद, उपभोक्तावाद और संघर्षों की राजनीति से

प्रभावित हो रहा है, तब भारतीय विश्वबोध सह–अस्तित्व, शांति और समन्वय का मार्ग प्रस्तुत करता है। भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रकृति को केवल संसाधन नहीं माना गया, बल्कि उसे माता, देवता और जीवनदाता के रूप में स्वीकार किया गया। नदियों, पर्वतों, वृक्षों और पशु–पक्षियों के प्रति श्रद्धा का भाव भारतीय संस्कृति की पर्यावरणीय चेतना को दर्शाता है। आधुनिक पर्यावरण संकट के समय यह दृष्टिकोण अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि यह मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलित संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देता है।

इसी प्रकार 'भारतबोध' भारतीय समाज की ऐतिहासिक स्मृति, सांस्कृतिक निरंतरता और राष्ट्रीय आत्मचेतना का आधार है। भारतबोध का अर्थ केवल भारत के गौरवशाली अतीत का स्मरण करना नहीं, बल्कि भारतीय समाज की बहुलतावादी परम्पराओं, सांस्कृतिक विविधताओं और साझा मूल्यों को समझना भी है। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसकी समावेशी प्रकृति रही है। यहाँ विभिन्न भाषाएँ, धर्म, जातियाँ, जीवन–पद्धतियाँ और सांस्कृतिक परम्पराएँ सहस्राब्दियों से साथ–साथ विकसित होती रही हैं। यही कारण है कि भारतीय सभ्यता अनेक आक्रमणों, राजनीतिक परिवर्तनों और सामाजिक संघर्षों के बावजूद अपनी मूल सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने में सफल रही। भारतबोध व्यक्ति को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ता है तथा उसमें आत्मगौरव और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करता है।

भारतीय इतिहास और ज्ञान–परम्परा के अध्ययन में सत्ता और वर्चस्व का विमर्श भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इतिहास केवल घटनाओं का वर्णन नहीं होता, बल्कि यह सत्ता–संबंधों और वैचारिक संरचनाओं को भी अभिव्यक्त करता है। औपनिवेशिक काल में पश्चिमी विद्वानों ने भारतीय इतिहास और संस्कृति को एक विशेष दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया, जिसका उद्देश्य औपनिवेशिक शासन को वैध ठहराना था। भारतीय ज्ञान परम्पराओं को अवैज्ञानिक, रूढ़िवादी और पिछड़ा सिद्ध करने का प्रयास किया गया। इसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज में आत्महीनता की भावना उत्पन्न हुई। किंतु आधुनिक भारतीय चिंतकों और इतिहासकारों ने भारतीय स्रोतों, लोकपरम्पराओं और सांस्कृतिक धरोहरों के पुनर्पाठ द्वारा इस मानसिक दासता को चुनौती दी। इस प्रक्रिया ने भारतीय समाज में सांस्कृतिक पुनर्जागरण और आत्मविश्वास को बढ़ावा दिया।

सत्ता और वर्चस्व का प्रश्न केवल औपनिवेशिक संदर्भ तक सीमित नहीं है, बल्कि भारतीय समाज के आंतरिक सामाजिक ढाँचों में भी यह दिखाई देता है। जाति, वर्ग और लैंगिक असमानताओं ने समाज में अनेक प्रकार के वर्चस्व पैदा किए। भारतीय ज्ञान परम्परा का सकारात्मक पक्ष यह है कि इसमें आत्मसुधार और प्रतिरोध की परम्परा भी मौजूद रही है। भक्ति आन्दोलन, सूफी परम्परा और

लोकचेतना ने सामाजिक समानता, मानवता और प्रेम का संदेश दिया। कबीर, गुरु नानक, रैदास और तुलसीदास जैसे संतों ने सामाजिक विभाजनों के विरुद्ध समन्वयवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा केवल परम्पराओं के संरक्षण तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसमें परिवर्तन और सुधार की क्षमता भी विद्यमान रही है।

सभ्यता की व्यावहारिक बुद्धिमत्ता नगरीय प्रबंधन, स्थापत्य और जल–संरक्षण प्रणालियों में स्पष्ट दिखाई देती है। सिंधु–सरस्वती सभ्यता के नगरों में सुव्यवस्थित सड़कें, जल–निकासी व्यवस्था और सार्वजनिक निर्माण इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीन भारत में वैज्ञानिक और प्रशासनिक दृष्टि अत्यंत विकसित थी। इसी प्रकार प्राचीन और मध्यकालीन भारत में तालाब, बावड़ियाँ, नहरें और सामुदायिक जल–संरक्षण प्रणालियाँ स्थानीय पर्यावरण के अनुकूल विकसित की गई थीं। आज जब आधुनिक नगर प्रदूषण, जल–संकट और अव्यवस्थित शहरीकरण की समस्याओं से जूझ रहे हैं, तब भारतीय पारम्परिक नगरीय ज्ञान और पर्यावरणीय दृष्टि से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। पुरातत्त्व और पुरातात्त्विक संरक्षण भारतीय इतिहास की समझ को वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं। पुरातात्त्विक अवशेष केवल पत्थर, मिट्टी या धातु की वस्तुएँ नहीं होते, बल्कि वे किसी सभ्यता की जीवन–पद्धति, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक चेतना के साक्ष्य होते हैं। मंदिर, स्तूप, अभिलेख, मूर्तियाँ और प्राचीन नगर भारतीय इतिहास की जीवंत स्मृतियाँ हैं। इनके संरक्षण के माध्यम से आने वाली पीढ़ियाँ अपनी सांस्कृतिक विरासत से जुड़ी रहती हैं। दुर्भाग्यवश आधुनिक विकास, प्रदूषण और अतिक्रमण के कारण अनेक ऐतिहासिक धरोहरें संकट में हैं। इसलिए पुरातात्त्विक संरक्षण केवल सरकारी दायित्व नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व भी है।

भारतीय मूर्त और अमूर्त सांस्कृतिक विरासत भारतीय समाज की सांस्कृतिक आत्मा का प्रतिनिधित्व करती हैं। मूर्त विरासत में जहाँ स्थापत्य, स्मारक और कला–रूप शामिल हैं, वहीं अमूर्त विरासत में लोकगीत, लोकनृत्य, त्योहार, भाषा, परम्पराएँ और पारम्परिक ज्ञान प्रणालियाँ सम्मिलित हैं। भारतीय लोकसंस्कृति में समाज की सामूहिक स्मृति सुरक्षित रहती है। लोकगीतों में जनजीवन के सुख–दुःख, संघर्ष और सांस्कृतिक अनुभव अभिव्यक्त होते हैं। आधुनिक वैश्वीकरण और बाजारवाद के प्रभाव से अनेक लोकपरम्पराएँ लुप्त होती जा रही हैं। ऐसे में सांस्कृतिक संरक्षण केवल अतीत को बचाने का प्रयास नहीं, बल्कि सांस्कृतिक विविधता और सामाजिक पहचान को सुरक्षित रखने का माध्यम भी है। भारतीय परम्परागत ज्ञान प्रणालियाँ आज भी मानव समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। आयुर्वेद, योग, प्राकृतिक चिकित्सा, कृषि–विज्ञान और जल–संरक्षण जैसी प्रणालियाँ सतत् विकास और स्वस्थ जीवन की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। योग आज वैश्विक स्तर पर

मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए स्वीकार किया जा चुका है। इसी प्रकार भारतीय कृषि–ज्ञान पर्यावरणीय संतुलन और जैव–विविधता की रक्षा में सहायक हो सकता है। आधुनिक विज्ञान और पारम्परिक ज्ञान के समन्वय द्वारा अधिक मानवीय और टिकाऊ विकास मॉडल विकसित किए जा सकते हैं।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा अतीत की गौरवगाथा भर नहीं है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी प्रेरणा का स्रोत है। यह मानवता को सह–अस्तित्व, समन्वय, नैतिकता और सांस्कृतिक विविधता का संदेश देती है। भारतीय ज्ञान परम्परा का अध्ययन केवल अकादमिक शोध तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि इसे सामाजिक जीवन, शिक्षा, सांस्कृतिक नीति और वैश्विक संवाद का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। यही अध्ययन भारत को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ते हुए विश्व समुदाय के समक्ष एक मानवीय, समावेशी और संतुलित सभ्यता के रूप में स्थापित कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. Agarwal, A., & Narain, S. (1997). *Dying wisdom: Rise, fall and potential of India's traditional water harvesting systems*. Centre for Science and Environment.
2. Altekar, A. S. (1944). *Education in ancient India*. Nand Kishore & Bros.
3. Foucault, M. (1980). *Power/knowledge: Selected interviews and other writings 1972–1977* (C. Gordon, Ed.). Pantheon Books.
4. Gandhi, M. K. (2009). *Hind Swaraj*. Navajivan Publishing House. (Original work published 1909)
5. Kangle, R. P. (1965). *The Kautiliya Arthashastra* (Part II). University of Bombay.
6. Macaulay, T. B. (2001). *Minute on Indian education*. In G. M. Young (Ed.), *Macaulay: Prose and poetry* (pp. 721–724). Harvard University Press. (Original work published 1835)
7. Michell, G. (1988). *The Hindu temple: An introduction to its meaning and forms*. University of Chicago Press.
8. Possehl, G. L. (2002). *The Indus civilization: A contemporary perspective*. AltaMira Press.
9. Radhakrishnan, S. (1927). *Indian philosophy* (Vol. 1). Oxford University Press.
10. Sharma, R. S. (2005). *India's ancient past*. Oxford University Press.
11. Singh, U. (2008). *A history of ancient and early medieval India: From the Stone Age to the 12th century*. Pearson Education.
12. Thapar, R. (2002). *Early India: From the origins to AD 1300*. University of California Press.